NOTES

अध्याय—1

भाषा : अर्थ, स्वरूप एवं अभिलक्षण

अध्याय में प्रस्तुत हैं :

- अध्ययन के उद्देश्य
- परिचय
- भाषा
- भाषा तथा वाक्
- भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण
- भाषा की परिभाषा
- भाषा के अभिलक्षण
- भाषा की विशेषताएँ
- भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार
- भाषा और प्रतीक व्यवस्था
- भाषा व्यवहार
- भाषा संरचना
- भाषिक संरचना के स्तर
- सार—संक्षेप
- अभ्यास—प्रश्न

अध्ययन के उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत सम्मिलित की गई विषय वस्तु के अध्ययन से आपको निम्नलिखित जानकारियाँ देने के का उद्देश्य निहित है–

1. भाषा एवं उसकी व्यवस्था की जानकारी देना।
2. भाषा व्यवहार तथा उसकी संरचना से परिचित कराना।
3. भाषा प्रकार्य एवं भाषा अभिलक्षणस की जानकारी देना।

परिचय

इस इकाई का प्रमुख उद्देश्य है भाषा के विविध पक्षों से परिचित कराना। इन सिद्धांतों का अध्ययन कर अध्येता किसी भाषा एवं साहित्य के मर्म को आत्मसात करता है। भाषा विज्ञान में जिस भाषा का ग्रहण है, वह संकेतिक आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है। किसी व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तथा विश्व के लिए भाषा का अप्रतिम महत्व है। मनुष्य के लिए समस्त प्रकार के ज्ञान और कौशल तथा जीवन व जगत के उन्नति अवनति में भाषा की ही भूमिका होती है, जिसका अध्ययन–मनन समस्त मनुष्यों के लिए नितान्त आवश्यक है।

भाषा

भाषा मानवसभ्यता के विकास की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। मानव जाति का सारा ज्ञान भाषा के माध यम से ही विकसित हुआ है। सृष्टि में केवल मानव ही वाक्शक्ति संपन्न प्राणी है और यही उसकी श्रेष्ठता का मानदण्ड है। मानव वाहे जंगलों में रहता हो या आधुनिक नगरों में, भाषा उसकी सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति है। यह कहना अनुचित न होगा कि किसी समाज की भाषा जितनी अधिक समुन्नत होगी उसकी संस्कृति भी उतनी ही अधिक श्रेष्ठ होगी।

भाषा का हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, किंतु कदाचित अत्यधिक परिचय के कारण बहुत ही कम लोग इस पर ध्यान देते हैं, और बहुधा सांस लेने अथवा चलने के समान ही इस सहज रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त, भाषा के प्रभाव असाधारण हैं– उसके कारण मनुष्य अन्य जीवों से भिन्न है।

संस्कृत के प्रसिद्ध नीतिशास्त्री और वैयाकरण आचार्य भर्तहरि के अनुसार–

''न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।

अनुबिद्धमिव ज्ञानम् सर्व शब्देन भासते।।'

(अर्थात् संसार में ज्ञात कोई ऐसा विषय नहीं है जो शब्द का आश्रय न लेता हो। समस्त ज्ञान शब्द से ही उत्पन्न हुआ भाषित होता है)। कहना न होगा कि यहाँ पर 'शब्द' भाषा का द्योतक है। जैसा कि सर्वज्ञात है, सामान्य व्यवहार में भी, चिंतन करने से लेकर भाव या विचार की अभिव्यक्ति तक का सर्वोत्तम माध्यम 'भाषा' ही बनती है। यही कारण है कि मानव जीवन भर भाषा को प्रयुक्त ही नहीं करता रहता, नाना ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति और प्रगति भाषा के माध्यम से करता ही नहीं रहता, वरन् अपनी जीवन यात्रा में सर्वाधिक आश्रय भी भाषा का ही लेता है। इसी से कहा और जाना तो यह गया है कि 'वचनमेव प्रसादेन लोक यात्रा प्रवर्त्तते।'' (अर्थात् भाषा के द्वारा लोक यात्रा भी सहज बन जाती है)। इस विषय में आचार्य दण्डी का यह कथन एकदम सत्य है कि

''इन्दमन्धन्तमः कृस्नं जायेत भुवनत्रयम्।

यदि शब्दाहवयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।

(अर्थात् यदि संसार मं शब्द (भाषा) रूपी अग्नि का प्रकाश न होता तो त्रैलोक्य अंधकारमय हो जाता)

सामान्यतः लोक जीवन में 'भाषा' शब्द बड़े व्यापक अर्थों में प्रयुक्त हुआ मिलता है। सभ्य असभ्य, स्थानीय या प्रांतीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, वैयाक्तिक, जातिगत और सामाजिक, धर्मगत, जातिगत और स्थानगत, स्वाभाविक और कृत्रिम, सामाजिक (या पारस्परिक) और वैयक्तिक, न जाने कितने विशेष भात्मक प्रकार 'भाषा' के अर्थ को प्रकट करते समय प्रयुक्त किये जा रहे हैं। दूसरी ओर,

भाषाविज्ञान में इसका प्रयोग प्रायः संकुचित अर्थ में किया जाता है। शास्त्रीय पारिभाषिक और लक्षणात्मक दृष्टि से इतना अवश्य है कि भाषा में ध्वनि संकेत होते हैं– रूढ़, परंपरागत और नवीन, विभिन्न प्रकार के, जिनसे भाव विचारों की अभिव्यक्ति भी होती है और विनिमय भी। इनके अर्थ प्रायः रूढ़िगत होते हैं, किंतु वर्ग, जाति या समाजविशेष द्वारा निर्मित होने के कारण, ये दूसरी भाषा अर्थों से तथा ध्वनि चिन्हों से भी लिया हुआ करते हैं। निश्चयतः ये सार्थक होते हैं तथा इनका उच्चारण वर्ण या शब्दों के रूप में किया जाता है। इस प्रकार, इस 'भाषा' शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है 1. व्यापक अर्थ में तथा 2. संकुचित अर्थ में।

व्यापक अर्थ में भाषा जहाँ मनुष्य के चिरसंचित ज्ञान, अनुभव तथा सभ्यता के विकास का मूलाधार है, वहीं वह एक ऐसा महत्त्वपूर्ण साधन भी है जिसके द्वारा मानव अपने इतिहास, साहित्य, विज्ञान आदि अन्य ज्ञानों को उपलब्ध कराने के साथ साथ उनका प्रसाद एवं प्रचार भी करता है।

संकुचित अर्थ का मुख्य अभिप्राय मनुष्य द्वारा प्रयोग में लाई जाने वाली सार्थक ध्वनि समष्टि से है अर्थात् निरर्थक ध्वनियों या सांकेतिक चिन्हों अथवा इशारों को भाषा वैज्ञानिक अपने अध्ययन का विषय नहीं मानता। उसकी दृष्टि में मानव मुख से निः सृत ऐसी सार्थक ध्वनियाँ ही भाषा कहलाती हैं, जिनका अध्ययन विश्लेषण भी किया जा सके। इसके अतिरिक्त जिसके द्वारा मानव परस्पर अपने भाव विचारों और इच्छाओं का स्वेच्छा से आदान प्रदान कर सकें, वही भाषा है।

भाषा तथा वाक्–

सस्यूर के पूर्व 'भाषा' तथा 'वाक्' का अंतर सामने नहीं आया था। सस्यूर ने ही सबसे पहले इन दोनों को अलगाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। यह उनकी सबसे मौलिक देन थी। उनके अनुसार दोनों मे ये अंतर हैं–

(क) भाषा एक व्यवस्था है, जबकि वाक् उसका उच्चरित या लिखित व्यक्त रूप है।

(ख) भाषा अपने बोलने वाले समाज के मस्तिष्क में होती है, जबकि वाक् व्यक्ति द्वारा प्रयुक्त होता है। इस प्रकार भाषा सामाजिक है तो वाक् वैयक्तिक। इसे यों भी कहा जा सकता है कि वाक् भाषा का वैयक्तिक रूप है तो भाषा वाक् का सामाजिक रूप।

(ग) भाषा की सत्ता मानसिक होती है तो वाक् की भौतिक।

(घ) भाषा अमूर्त होती है तो वाक् मूर्त।

(ङ) कुछ लोगों ने इस प्रसंग में यह भी कहा है कि भाषा वास्तविक नहीं होती जबकि वाक् वास्तविक होती है।

वस्तुतः सस्यूर ने स्पष्टतः कहा है कि दोनों ही वास्तविक होती हैं। हाँ दोनों की वास्तविकता में अंतर है। भाषा की वास्तविकता मस्तिष्क में है, तो वाक् की भौतिक जगत में।

सस्यूर द्वारा संकेतिक ये अंतर आगे भी भाषाविज्ञान के क्षेत्र में विकसित होने वाले नए–नए सम्प्रदायों में किसी–न–किसी रूप में स्वीकृत हुए। कोपेनहैगेन सम्प्रदाय ने भाषा को अमूर्त तथा वाक् को मूर्त कहा। प्राग सम्प्रदाय ने स्वनिम की सत्ता 'भाषा' में तथा उपस्वन की सत्ता 'वाक्' में मानी है। चॉम्स्की के रूपांतरपरक सम्प्रदाय में सामर्थ्य तथा निष्पादन में अंतर की बात की जाती है। कहना न होगा कि पहले का संबंध 'भाषा' से है तो दूसरे का 'वाक्' से। और अंत में इस प्रसंग में यदि शैली की बात उठाएं तो एक दृष्टि से भाषा तो सामान्य होती है और शैली की सत्ता वाक् में होती है।

भाषा की परिभाषा और अभिलक्षण

भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका कोशीय अर्थ है कहना या प्रकट करना। अतः भाषा को मनुष्य के भावों या विचारों को प्रकट करने का साधन कहा जा सकता है। मनुष्य अपने भावों या विचारों के आदान प्रदान के लिए ज्ञानेन्द्रियों को माध्यम बनाता है। ऐसे सभी माध्यमों को भाषा के अंतर्गत समाहित नहीं किया जा सकता। भाषा विज्ञान के अंतर्गत 'भाषा' के जिस रूप का विश्लेषण किया जाता है वह उस व्यवस्था का अध्ययन है, जिसके अंतर्गत मनुष्य ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों या विचारों का आदान प्रदान करता है। उस व्यवस्था को

परिभाषित करना यद्यपि जटिल है किन्तु प्राचीनकाल से विद्वानों ने भाषा को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

प्राचीनकाल में महर्षि पंतजलि ने लिखा है 'व्यक्तायां वाचि वर्णा येषां तु इमे व्यक्त वाचः। पतंजलि के अनुसार जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है , उसे भाषा कहते हैं। कालान्तर में पाश्चात्य एवं भारतीय भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के इस 'व्यक्त वाच' को विस्तार से विश्लेषित किया है।

भाषा की परिभाषा –

भाषा और मनुष्य का इतना धनिष्ठ संबंध होते हुए भी उनके वास्तविक स्वरूप या लक्षण अथवा परिभाषा को लेकर विश्व के विभिन्न विद्वानों के पृथक–पृथक मत दृष्टिगत होते हैं। परिणामस्वरूप अनेक विद्वानों ने अपने अपने ढंग से भाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये उसे पारिभाषित किया है। जिन्हें सुविधा की दृष्टि से दो वर्गों में रख सकते हैं–(1) भारतीय (2) पाश्चात्य।

भारतीय मत :

1. ''वर्णों में व्यक्त वाणी को भाषा कहते है।'' पंतजलि
2. ''भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भाँति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचारों को स्पष्टतः समझ सकता है।'' ' कामता प्रसाद गुरू
3. ''विभिन्न अर्थों में सांकेतिक शब्द समूह ही भाषा है।'' किशोरीदास बाजपेयी
4. डॉ. बाबूराम सक्सेना ''जिन ध्वनि चिन्हों द्वारा मनुष्य परस्पर विचार विनिमय करता है, उनको समष्टि रूप से भाषा कहते हैं।''
5. डॉ. मंगलदेव शास्त्री ''भाषा मनुष्य की उस चेष्टा या व्यापार को कहते हैं, जिससे मनुष्य अपने उच्चारणोपयोगी शरीरवयवों से उच्चारण किए गए वर्णात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।''
6. डॉ. भोलानाथ तिवारी ''भाषा, उच्चारण अवयवों से उच्चरित, यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके द्वारा समाज विशेष के लोग आपस में विचारों का आदान प्रदान करते हैं।''
7. पी.डी. गुणे –''शब्दों द्वारा हृदयगत भावों तथा विचारों का प्रकटीकरण ही भाषा है।''
8. सुकुमार सेन ''अर्थवान, कण्ठ से निःसृत ध्वनि समष्टि ही भाषा है।''

पाश्चात्य मत :

प्लेटो ने अपने ग्रंथ यॉपटिक्स' में एक जगह इस संबंध में कहा है कि

1. ''विचार आत्मा की मूक या अध्वन्यात्मक बातचीत है, पर वही जब ध्वन्यात्मक होकर होठों पर प्रकट होती है।'' तो उसे भाषा की संज्ञा देते हैं। *–प्लेटो*
2. कोचे *"Language is articulate, limited sound, employed in expression"* अर्थात् अभिव्यंजना के लिए प्रयुक्त स्पष्ट, सीमित तथा सुसंगठित ध्वनि को भाषा कहते हैं।
3. कार्डिनर *"The common definition of speech is the use of articulate sound symbols for the expression of thought."* (विचारों की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत व्यक्त और स्पष्ट ध्वनि संकेतों को भाषा कहते हैं।)
4. ब्लॉक तथा ट्रेगर *"A language is a system of arbitrary vocal symbols by means of which a society group co-operates."*
5. *Language is a system of arbitrary vocal symbols by mceans of which member of a social group cooperate and interact" —"Strutevent".*

भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिससे एक सामाजिक समूह परस्पर सहयोग करता है।

इन परिभाषाओं के आधार पर भाषा के स्वरूप को निम्नलिखित सूत्रों में निबद्ध किया जा सकता है–

1. भाषा उच्चरित ध्वनि संकेतों की व्यवस्था है।
2. वे संकेत यादृच्छिक होते हैं।
3. भाषा एक व्यवस्था है।
4. भाषा संप्रेषण का सहज माध्यम है।

(1) भाषा उच्चरित ध्वनि संकेतों की व्यवस्था है। 'भाषा' शब्द की व्युत्पत्ति भाष् धातु से हुई है जिसका अर्थ है 'स्पष्ट वाणी'। भाषाविज्ञान में वागवयवों से उच्चरित ध्वनिसमूह को ही भाषा कहा जाता है। तालियों की आवाज या पैर पटकने का शब्द संप्रेषण का आंशिक साधन होते हुए भी 'भाषा' की परिधि में नहीं आते। यहां तक कि मुंह से उत्पन्न सीटी आदि की आवाजों को भी भाषा नहीं कहा जा सकता।

यहां प्रश्न उपस्थित होता है कि लिपिबद्ध भाषा, ब्रेल लिपि की 'स्पर्श भाषा' या 'मूक–बधिरों की 'संकेत भाषा' को 'भाषा' कहा जा सकता है या नहीं? निःसन्देह! परन्तु ये सब उच्चरित भाषा के ही रूपान्तरण हैं। मूल रूप से भाषा उच्चरित होती है। लिपि उसे दृश्य रूप प्रदान करती है, ब्रेल लिपि स्पर्श रूप और संकेत भाषा दृश्य संकेत रूप। इन माध्यमों से जिस 'अभिप्राय' को श्रोता तक पहुंचाया जाता है, वह वस्तुतः 'शब्द' रूप होता है और माध्यमों की यह व्यापकता यहीं समाप्त नहीं हो जाती। रेडियो, टेपरेकार्डर, टेलीविजन, कम्प्यूटर जैसे संप्रेषण के आधुनिकतम साधन भी इस सत्य को झुठला नहीं सकते कि भाषा आखिरकार शब्द रूप है– उच्चरित ध्वनियों की व्यवस्था है। उसका रूपान्तरण केवल वैज्ञानिक चमत्कार है।

(2) ध्वनि संकेत यादृच्छिक होते हैं। यादृच्छिक अंग्रेजी 'आबिट्रेरी' शब्द का अनुवाद है, जिसका अर्थ है 'उन्मुक्त' या 'स्वच्छन्द'। भाषिक ध्वनि संकेतों को यादृच्छिक कहने का तात्पर्य यह है कि शब्द और अर्थ के बीच जो सम्बन्ध हैं, उसके पीछे कोई तर्क संगत आधार नहीं होता। जब हम 'पुस्तक' शब्द बोलते हैं, तो एक वस्तु का बोध होता है, उस वस्तु को हम 'पुस्तक' ही क्यों कहते हैं, इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। यह एक उन्मुक्त सम्बन्ध है जो किसी 'सह–सम्बन्ध' पर आधारित नहीं है।

भारतीय व्याकरण में भी इस प्रश्न पर विचार किया गया है, जिसके अन्तर्गत शब्द और अर्थ के पारस्परिक सम्बन्धों का इतिहास ढूँढ़ने का प्रयत्न हुआ है। उदाहरणार्थ 'पततीति पत्रम्' या 'गच्छतीति गौः जैसी व्युत्पत्तियाँ 'पत्र' और 'गौ' शब्दों का उनके अर्थों से सम्बन्ध जोड़ती है। जो गिरता है वह 'पत्र' (पत्ता) तथा जो चलती है वह गौः (गाय)। ऊपर से देखने पर यह प्रयास शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का आधार तलाश करता हुआ प्रतीत होता है, परन्तु यादृच्छिकता की बात फिर भी वहीं की वहीं रह जाती है। प्रश्न उठता है कि गिरने की क्रिया को 'पत्' और जाने को गम् (गच्छ) क्यों कहते हैं? यही बात यह है कि शब्द और अर्थ का सम्बन्ध यादृच्छिक ही होता है। इसीलिए तो भिन्न–भिन्न भाषाओं में एक ही अर्थ के वाचक भिन्न–भिन्न शब्द प्रचलित हैं।

(3) भाषा एक व्यवस्था है। प्रत्येक भाषा का अपना व्याकरण होता है, जो उसके नियमों का निर्धारण करता है। माना कि सामान्य वक्ता भाषा के नियमों का बहुत सतर्कता से पालन नहीं करता, परन्तु किसी सीमा तक उसे उसके नियन्त्रण में रहना ही पड़ता है।यदि कोई पुरुष 'मैं जाती हूँ' कहे तो श्रोता उसके आशय को भले ही समझ लें यह प्रयोग हास्यास्पद माना जाएगा। कभी–कभी तो इस स्वच्छन्दता से अर्थ सम्प्रेषण में बाधा भी पहुँच सकती है।

(4) भाषा सम्प्रेषण का सहज माध्यम है। दैनिक व्यवहार में हम अपने भाव या विचार दूसरों तक पहुँचाना चाहते हैं। यदि हमें प्यास लगी है तो हम किसी से कहते हैं 'पानी लाओ' जल्दी ही हमें पानी मिल जाता है। यों तो इशारों से भी पानी मांगा जा सकता है परन्तु संकेतों की अपनी सीमाएं हैं। संश्लिष्ट भावों और विचारों को उनके द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

भाषा के दो पक्ष–

भाषा के दो पक्ष माने गए हैं :

1–मानसिक और 2–भौतिक। मानसिक पक्ष उसका अमूर्त रूप है और भौतिक मूर्त रूप। प्रत्येक वक्ता के मन में भाव और विचार अमूर्त रूप में विद्यमान रहते हैं। जब वक्ता उन्हें प्रकट करना चाहता है तो वागवयवों की सहायता लेता है और भाषा मूर्त रूप ग्रहण कर लेती है। उधर श्रोता के मन में भी वह भाषा अमूर्त रूप में विद्यमान रहती है। इसलिए जब श्रोता द्वारा उच्चरित भाषा श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से उसके मन तक पहुंचती है तो वह वक्ता के अभिप्राय को अविकल रूप से ग्रहण कर लेता है।

इस प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता के बीच सामंजस्य होना जरूरी है। यदि श्रोता वक्ता की भाषा नहीं जानता तो अर्थ संप्रेषण नहीं हो पाएगा। कई बार वक्ता और श्रोता के बीच बौद्धिक स्तर की भिन्नता के कारण भी अर्थ सम्प्रेषण नहीं हो पाता।

भाषा के अभिलक्षण :

भाषा के अभिलक्षण अभिलक्षण का अर्थ मूलभूत लक्षण या विशेषताएं जब हम भाषा का संदर्भ मानवीय भाषा से लेते हैं तो यह जानना आवश्यक हो जाता है कि मानवीय भाषा की मूलभूत विशेषतायें या अभिलक्षण कौन कौन से हैं ? ये अभिलक्षण ही मानवीय भाषा को अन्य भाषिक संदर्भों से पृथक करते हैं।

मुख्य लक्षण निम्नलिखित हैं–

1. **भाषा सामाजिक वस्तु है**

   भाषा की परिभाषा में कहा गया है कि भाषा विचार विनिमय का माध्यम है। इसके द्वारा ही किसी समाज के लोग विचारों का आदान प्रदान करते हैं। भाषा के लिए दो पक्ष जरूरी हैं, वक्ता और श्रोता। जैसे ही व्यक्ति एक से दो होते हैं,समाज के निर्माण की शुरूआत हो जाती है। यहीं से भाषा की सामाजिकता शुरू होती है।

   भाषा का जन्म समाज में होता है और समाज में ही वह विकसित होती है। बिना समाज के भाषा की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि किसी बालक को जन्म के तत्काल बाद जंगल में छोड़ दिया जाये, तो वह भाषा का एक भी शब्द नहीं सीख पायेगा और न ही उसे भाषा की जरूरत महसूस होगी।

2. **भाषा पैत्रिक या आनुवंशिक सम्पत्ति नहीं हैं**

   भाषा, ऊपरी तौर पर, मनुष्य की जन्मजात सम्पत्ति है। बच्चा परिवार में रहकर कब भाषा सीख जाता है, इसका पता नहीं नहीं चलता। सामान्यता तीन साल का बच्चा उतनी भाषा जानता है, जितनी व्यवहार के लिए आवश्यक होती है। वह बड़ा होता जाता है और उसकी भाषा का क्षेत्र भी उसी अनुपात में बढ़ता जाता है। भाषा सीखने के लिए उसे कभी कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। भाषा की यह अर्जन प्रक्रिया माँ की गोद से प्रारंभ होती है। इसीलिए हम स्वभाषा को 'मातृभाषा' कहते हैं। परंतु इसका तात्पर्य यह नहीं कि भाषा हमें माँ के दूध के साथ सहज मिल जाती है। यदि ऐसा होता तो भाषा सीखने की आवश्यकता ही न होती।

   यदि किसी बच्चे को एक डेढ़ साल की उम्र में कोई गोद ले ले, तो वह नये परिवार की भाषा को उतनी ही सहजता से सीखेगा, जितनी अपनी 'माँ की भाषा' को। तब उसके नये परिवार की भाषा ही उसकी 'मातृभाषा' कहलायेगी। परंतु कल्पना कीजिए कि बच्चे को पूर्णतया भाषा विरहित परिवेश में रखा जाये तो क्या होगा ? वह पूर्णतया गूंगा होगा और कोई भाषा नहीं सीख पायेगा।

   स्पष्ट है कि भाषा पैत्रिक या एक अनुवांसिक संपत्ति नहीं है।

3. **भाषा अर्जित वस्तु है**

   ऊपर के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भाषा हम माँ के पेट से सीखकर नहीं आते। वह हमें अर्जित करनी पड़ती है। बच्चा अधिकतर भाषा व्यवहार से सीखता है। भारतीय

काव्यशास्त्र में इस अर्जन प्रक्रिया का एक सुंदर उदाहरण मिलता है। एक बच्चे ने देखा कि एक व्यक्ति ने दूसरे से कहा 'गाम् आनय' (गाय लाओ)। दूसरा व्यक्ति गया और कुछ समय बाद एक पशु के साथ लौटा। कुछ समय बाद उस व्यक्ति ने दूसरे से कहा 'अश्वम् आनय' (घोड़ा लाओ)। दूसरा व्यक्ति फिर गया और एक अन्य पशु के साथ वापस आया। बालक ने इस व्यवहार से तीन शब्द सीखे गौ (गाय), अश्व (घोड़ा) और आनय (लाओ)। वस्तुतः बच्चा अधिकतर भाषा इसी प्रकार सीखता हैं।

4. भाषा परम्परागत वस्तु है

भाषा एक सनातन वस्तु है, जो हमें परंपरा से प्राप्त होती है। हम अपने परिवार में जो भाषा बोलते हैं, वह हमें अपने माता पिता से मिलती है, माता पिता को दादा –दादी से और उन्हें अपनी पूर्ववर्ती पीढ़ी से। यह प्रवाह अनादिकील से इसी प्रकार चला आ रहा है। समय के साथ भाषा बदलती रहती है, परंतु उसका प्रवाह कभी खंडित नहीं होता। यदि हम किसी नयी भाषा का निर्माण करना चाहें तो नहीं कर सकते। पिछली शताब्दी में विश्व के कुछ उत्साही बुद्धिजीवियों ने 'एस्पिरेन्टो' नाम की एक विश्वभाषा का निर्माण किया। महानगरों में उसकी कक्षाएँ चलीं और अनेक लोगों ने उसे सीखा भी। परंतु यह प्रयोग सफल नहीं रहा। कारण यही था कि यह प्रयास भाषा की प्रकृति के विरूद्ध था, क्योंकि भाषा परम्परागत वस्तु हैं, उसका निर्माण नहीं होता।

5. भाषा नित्य परिवर्तनशील है

भाषा निरंतर बदलती रहती है। यह परिवर्तन ध्वनि, रूपरचना, वाक्यविन्यास और अर्थ सभी क्षेत्रों में होता है। ध्वनि परिवर्तन के कारण संस्कृत के हस्त, कर्ण, अक्षि आदि शब्द हाथ, कान और आँख हो गये। रूपरचना के परिवर्तन के कारण योगात्मक संस्कृत भाषा हिंदी तक पहुँचते पहुँचते अर्ध अयोगात्मक हो गयी, वाक्य विन्यास में भी परिवर्तन हुआ और पदक्रम जरूरी हो गया। उधर अर्थपरिवर्तन के चलते 'असुर' देवता से राक्षस बन गये। वैदिक काल से इक्कीसवीं शताब्दी तक आते आते भाषा इतनी बदल गयी कि आज का कोई हिंदी भाषा बिना प्रयास के उस काल की भाषा को नहीं समझ सकता।

भाषा की परिवर्तनशीलता केवली समय तक ही सीमित नहीं है। स्थान के साथ साथ भी उसका स्वरूप बदलता है। एक कहावत है चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी। इस परिवर्तन के कारण ही एक ही परिवार की भाषा सिंधी, हिंदी, गुजराती, मराठी, उड़िया, बंगला, असमिया आदि अनेक भाषाओं में बदल गयी तथा प्रत्येक भाषा की दर्जनों बोलियाँ और उपबोलियाँ बन गयीं।

6. भाषा व्याकरण द्वारा नियंत्रित होती है

ऊपर कहा गया है कि भाषा नित्य परिवर्तनील है। प्रयत्नलाघव, अज्ञान और अपूर्ण अनुकरण के कारण उसमें निरंतर परिवर्तन होता रहता है। परंतु व्याकरण इस परिवर्तन को नियंत्रित रखता है। 'अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के कारण भाषा परिवर्तन चाहती है, और व्याकरण उसे स्थिर रखना चाहता है। एक विद्वान ने कहा है कि व्याकरण भाषा का पुलिसमैन है। भाषा एक व्यवस्था है। यदि उसे अनुशासन में रखा जायेगा तो भाषिक अराजकता छा जायेगी और परिवर्तन की गति इतनी तेज हो जायेगी कि एक पीढ़ी की भाषा दूसरी पीढ़ी के लिए दुर्बोध हो जायेगी। इसलिए भाषा के मानकीकरण और स्थिरीकरण की आवश्यकता होती है।

ऊपर से देखने पर परिवर्तन और स्थिरीकरण परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, परंतु भाषा के संदर्भ में ये दोनों साथ साथ काम करते हैं। परिवर्तन भाषा की केन्द्रापगामी प्रवृत्ति है और स्थिरीकरण केन्द्राभिगामी। इन दोनों में संघर्ष चलता रहता है। अंतिम विजय परिवर्तन की ही होती हैं किन्तु स्थिरीकरण उसकी गति का नियमन करता है और फलस्वरूप परिवर्तन मंद गति से होता है।

स्व-प्रगति की जाँच करें

7. प्रत्येक भाषा की भौगोलिक और ऐतिहासिक सीमा होती है

प्रत्येक भाषा की स्थान और काल की दृष्टिसे सुनिश्चित सीमाएँ होती हैं। जैसे पंजाबी की सीमाएँ, पंजाब, बंगला की बंगाल, मराठी की महाराष्ट्र तथा गुजराती की गुजरात प्रदेश की

राजनैतिक सीमाओं तक व्याप्त हैं। हमारे देश में भाषावार प्रांत रचना हुई है। अतः भाषाओं की सीमाओं को लेकर कोई संभ्रम की स्थिति नहीं है। परंतु यदि ऐसा न होता तो भी भाषाओं की सीमाएँ स्वतः निर्धारित होती। योरोप में तो अधिकतर भाषाएँ संपूर्ण देश में प्रयुक्त होती हैं।

काल की दृष्टि से भी भाषाओं की व्यापकता सुनिश्चित होती है। उदाहरण के लिए आर्य भाषाओं के विकास क्रम पर दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि मध्यकालीन भाषाओं का समय 500 ई.पू. से लेकर 1000 ई. तक माना गया है। इस 1500 वर्ष के कालखण्ड में भी 500 ई. पू. से 0 ई. तक का काल पालि का. 0 ई. से 500 ई. तक का प्राकृतों का तथा 500 ई. से 1000 ई. तक का समय अपभ्रंशों का माना जाता है।

यहाँ यह बात स्पष्ट करना भी जरूरी है कि भाषा की सीमाएँ राजनैतिक सीमाओं की तरह सुस्पष्ट नहीं होती। दो भाषाओं के बीच सैकड़ों वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र संधि क्षेत्र होता है, जहाँ दोनों भाषाएँ बोली जाती हैं। जैसे जैसे हम एक भाषा के केन्द्र की ओर बढ़ते हैं , पहली भाषा का प्रभाव कम होता जाता है। महाराष्ट्र और गुजरात की सीमा पर स्थित नंदुरबार और सूरत जिलों का काफी विस्तृत भाग मराठी और गुजराती का संधि क्षेत्र है।

यही बात काल सीमा पर भी लागू होती है। ग्यारहवीं बारहवीं शताब्दी में अपभ्रंश में रचनाएँ होती रहीं और दूसरी ओर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं ने भी पाँव जमाने शुरू कर दिये।

8. प्रत्येक भाषा का अपना स्वतंत्र ढाँचा होता है

ध्वनि, रूपरचना, वाक्यविन्यास और अर्थ की दृष्टि से हर एक भाषा की अपनी संरचना होती है। उदाहरणार्थ हमारा परंपरागत मूर्द्धन्य स्वर ऋ मराठी में रु है हिंदी में रि, वैदिक भाषा की ध्वनि मराठी में विद्यमान है हिंदी में नहीं। रूप रचना में भी उपर्युक्त दोनों भाषाओं में स्पष्ट अंतर हैमराठी में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के अतिरिक्त नपुंसक लिंग भी विद्यमान है, हिंदी में नहीं। अंग्रेजी में पूर्वसंर्गो का प्रयोग होता है, भारतीय भाषाओं में परसर्गों का। हमारा वाक्य विन्यास कर्ता कर्म क्रिया के पदक्रम पर आधारित है। अंग्रेजी का कर्ता क्रिया कर्म के। तात्पर्य यह कि प्रत्येक भाषा के अपने व्याकरणिक नियम हैं, अपनी संरचना पद्धति है।

9. भाषा कठिनता से सरलता की ओर जाती है

प्रयत्नलाघ मनुष्य की सहज प्रवृत्ति है, जो भाषा के विकास पर भी लागू होती है। ध्वनि, रूप, वाक्यरचना आदि सभी क्षेत्रों में भाषा सरलता की ओर गतिमान रहती है। संस्कृत के संयुक्ताक्षर पालि और प्राकृत में द्वित्ताक्षरों में परिवर्तित हो गये और बाद में द्वित्व भी समाप्त हो गया। कर्म कम्म काम, अक्षि– अक्खि आँख आदि शब्दों का विकास क्रम इसका प्रमाण है। द्विवचन का धीरे धीरे समाप्त हो जाना, विभक्तियों का घिसना और उनकी जगह परसर्गों का प्रयोग और क्रिया के तिड़त रूपों की जगह कृदन्तों का प्रचलन भाषा की इस प्रवृत्ति का द्योतक हैं। अंग्रेजी में भी जीवनए जीममए जील आदि सर्वनामों का लुप्त हो जाना, 'स्ट्रांग' क्रियाओं की जगह 'वीक' क्रियाओं के प्रयोग बढ़ना, भाषा के सरलता की ओर बढ़ने के उदाहरण हैं।

10. भाषा संयोगावस्था से अयोगावस्था की ओर जाती है

यह भी प्रयत्नलाघव का ही एक रूप है। प्राचीन भारतीय आर्य भाषाएँ संयोगावस्था में थीं। वाक्य में शब्दों का नहीं पदों का प्रयोग होता था। पदक्रम का कोई महत्त्व नहीं था। संस्कृत में 'बालक : पुस्तकं पठति' जैसे वाक्यों में सभी शब्द पद थे। तब 'अपदं न प्रयुजीत' भाषा का अनिवार्य सिद्धांत था। बाद में प्राकृतों और अपभ्रंशों में विभक्तियाँ लुप्त होने लगीं। आज हिंदी में 'बालक पुस्तक पढ़ता है' आदि वाक्यों में 'बालक' और 'पुस्तक' पूरी तरह अयोगात्मक शब्द हैं। पदक्रम से वे कर्त्ता और कर्म बन गये हैं। यह भारतीय भाषाओं के अयोगात्मक अवस्था की ओर बढ़ने का उदाहरण है। अंग्रेजी भी अयोगात्मक भाषा नहीं है। परंतु Ram Killed Ravan जैसे वाक्यों में कर्त्ता और कर्म पूरी तरह अयोगात्मक हो गये हैं।

11. भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता अर्थात भाषा परिवर्तनशील है

पिछले पृष्ठों में कहा गया है कि भाषा नित्य परिवर्तनशील होती है। अतः उसका कोई अंतिम रूप होना संभव ही नहीं। मराठी में बीसवीं शताब्दी में ही इतने परिवर्तन हुए कि पुरानी पीढ़ी

के लोग इसे भाषिक अराजकता तक कहने लगे। वहाँ संस्कृत के तत्सम शब्दों को उच्चारण के अनुसार बदल लिया गया। रीति, नीति, कवि, मुनि, मराठी में रीती, नीती, कवी और मुनी हो गये और मानक मराठी में इन्हें शुद्ध मान लिया गया। लेखन में अनुस्वार का सर्वत्र लोप हो गया। अमरीकी इंगलिश में भी वर्तनी के क्षेत्र में ऐसी ही स्वच्छदंता आयी। Kwality, Program आदि वर्तनियाँ चल पड़ी। स्पष्ट है कि यह बदलाव एक ही पीढ़ी के जीवनकाल में हुआ। कल और परिवर्तन होंगे, होते रहेंगे।

अपवाद रूप में संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसे पाणिनि के व्याकरण ने इतना स्थिर कर दिया है कि शताब्दियों की यात्रा में भी उसमें कोई बहुत उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ भाषावैज्ञानिकों का मत है कि संस्कृत एक मृत भाषा है। अतः वह एक रूढ़िबद्ध ढाँचे में बँधकर रह गयी है। परंतु ऐसा मानना युक्तिसंगत नहीं है। संस्कृत आज भी जीवित है। वह हमारे जन जीवन में बहुत गहरे तक पैठ चुकीहै।

12. भाषा का मौखिक रूप पहले परिवर्तित होता है

भाषा के मुख्य रूप ने दो भेद प्रयोग में आते हैं– मौखिक तथा लिखित। परिवर्तन की नियम पहले भाषा के मौखिक रूप को प्रभावित करता है, लिखित को बाद में। अनुकरण की अपूर्णता, शारीरिक कारणों तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक परिस्थितियों के कारण भाषा का मौखिक रूप अधिक परिवर्तित होता है। लिखित रूप प्रायः कम और बाद में बदलता है। ऐसा भी बहुधा होता है कि भाषा का मौखिक रूप परिवर्तित हो जाता है और लिखित रूप ज्यों का त्यों रह जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि लिखित भाषा मौखिक की अपेक्षा कहीं अधिक स्थिर, जड़ तथा गतिहीन होती है। इसीलिये भाषा के इन दोनों रूपों में बहुत अधिक अंतर दृष्टिगत होता है। उदाहरण के लिये 'ऋ', 'ष' आदि वर्णों का उच्चारण पहले कभी अपने ढंग से होता होगा, किंतु अब उनको 'रि' और 'स' आदि के रूप में उच्चरित करते हैं, किंतु हिंदी वर्णमाला में इसका स्थान यथावत् बना हुआ है। अंग्रेजी भाषा में इस प्रकार के उदाहरण बहुत बड़ी संख्या में दृष्टिगत होते है। उनकी वर्तनी आज भी पूर्ववत् बनी हुई हैं, जबकि उनका उच्चारण बिल्कुल बदल चुका है। Knowledge, Lieutinant, Knife, Daughter, But, Hour आदि इसी प्रकार के शब्द हैं। हिंदी में भी अनेक शब्दों के उच्चारण परिवर्तित हो गये हैं जैसे राम–रामा, गुप्त–गुप्ता, कृष्ण–किरशन, बुद्ध–बुद्धा, दिल्ली–देहली आदि।

13. भाषा स्थूलता से सूक्ष्मता और अप्रौढ़ता स प्रौढ़ता की ओर जाती है

भाषा प्रारंभ में स्थूल होती है। धीरे–धीरे सूक्ष्म मनोभावों और विचारों को व्यक्त करने के लिये उसकी अभिव्यक्ति क्षमता भी सूक्ष्म होती जाती है। मानव मस्तिष्क में सीधे जुड़े होने के कारण उसके विकास का प्रभाव भाषा पर पड़ता है। बालक पहले वस्तुओं का ज्ञान उनके स्थूल रूप में ग्रहण करता है। बाद में धीरे–धीरे वह अन्य सूक्ष्म भावों का परिचय प्राप्त करता है। इसी प्रकार भाषा का विकास भी स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है।

14. भाषा की दूसरी प्रवृत्ति यह भी है कि वह प्रारंभ में अनघड़ या अप्रौढ़ होती है –

उसमें व्याकरण संबंधी अनियमितायें, ग्राम्य प्रयोग, अपवाद तथा अशुद्धियाँ देखने में आती हैं। बाद में भाषा प्रयोग और प्रतिष्ठा के कारण संस्कृत होकर व्यवस्थित तथा प्रौढ़ रूप धारण कर लेती है। अनेक लोकभाषायें या बोलियाँ साहित्यिक रूप ग्रहण कर लेने पर कहीं अधिक प्रौढ़ प्राज्जना और व्यापक हो जाती है।

15. भाषा पैतृक एवं जन्मसिद्ध नहीं है–

भाषा मनुष्य को जन्म के साथ नहीं मिलती है। शरीर के तुल्य भाषा भी उसे जन्मसिद्ध नहीं है। भाषा पैतृक–परंपरा के रूप में अनायास नहीं मिलती है। भाषा सीखनी पड़ती है, अर्जित की जाती है। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि मानव के जन्म के समय समाज में भाषा की स्थिति है, पर वह बालक को स्वतः सिद्ध नहीं होती है। बालक में बोलने की शक्ति है। उसे वाक्–शक्ति मिली है, परन्तु शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समाज से अर्जित करना पड़ता है। माता और पिता आदि से शिक्षण के द्वारा प्राप्त होने पर भी उसे पैतृक नहीं कह सकते। इसी प्रकार भाषा जन्म

से ही प्राप्त न होने के कारण जन्मसिद्ध नहीं है। जंगल में छोड़े हुए बालक कुछ भी बोलने में असमर्थ रहते हैं।

16. भाषा भाव–सम्प्रेषण का साधन है–

भाषा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों और विचारों को दूसरे तक पहुंचाता है। विविध संकेतों और आंगिक साधनों के द्वारा अपना अभिप्राय स्पष्ट रूप से श्रोता तक नहीं पहुंचाया जा सकता है। भाषा के द्वारा बोलकर भावों को, अमूर्त भावों को, स्वारस्य को, आरोह–अवरोह को, सजीव भावनाओं को बोलकर या लिखित रूप में जितनी विशदता के साथ व्यक्त कर सकते हैं, उतना अन्य किसी प्रकार से नहीं।

17. भाषा का मूलरूप वाक्य है, पद केवल व्यावहारिक है–

यदि तात्विक दृष्टि से देखा जाता है तो यह सिद्ध होता है कि भाषा का मूल वाक्य है। अतएव पाश्चात्य भाषाशास्त्री भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वाक्य ही वह सत्ता है जो मानव के विचार को पूर्ण एवं स्पष्टरूप में प्रस्तुत करती है। वाक्यों का आधार विचार है और विचारों का मूर्तरूप वाक्य है। किसी एक भाव को मन में रखकर विचार किया जाता है। वह विचार पदों के द्वारा नहीं, अपितु वाक्यरूप में होता है। वाक्य की सत्ता को सर्वोच्च माना जाता है। वाक्य के संघटक अवयवों का विभाजन करने पर हमें पदों की सत्ता प्राप्त होती है। इसी प्रकार पदो ंके निर्मापक अवयवों का परीक्षण करने पर वर्णों की सत्ता प्राप्त होती है। उपयोगिता एवं शास्त्रीय दृष्टि से वाक्य ही भाषा के सार्थक अंग हैं।

भाषा की विशेषताएँ–

मानवीय भाषा में कतिपय ऐसी विशेषताएं होती हैं, जो अन्य प्राणियों की भाषा में नहीं मिलती। पाश्चात्य भाषा शास्त्री 'हॉकेट' ने सात विशेषताओं का उल्लेख किया है। वे हैं–

1. द्वैतता अर्थात किसी भाषा में दो तत्व अवश्य होते हैं। पहला है सार्थक ध्वनि–अंश, जिसे स्वनिम नाम से जानते हैं तथा दूसरा है–सूपिम।
2. उत्पादकता मुनष्य की भाषा में यह विशेषता होती है कि वह वक्ता तथा श्रोता के मध्य बोधगम्यता को उत्पन्न करती है।
3. पादृच्छिकता भाषा के किसी तत्व और अर्थ में को चिरस्थायी संबंध नहीं होता। सभी भाषिक तत्वों के अर्थ प्रयोक्ता द्वारा स्वैच्छिक रखे होते हैं, जो वस्तुतः संकेतजन्य होते हैं।
4. प्रेषण एवं ग्रहण में परस्पर परिवर्तनशीलता की क्षमता का होना– भाषा का उपयोग करने वाला कोई भी व्यक्ति अपने भाव या विचार को प्रेषित कर सकता है तथा ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार कथन एवं श्रवण के द्वारा आदान–प्रदान की प्रक्रिया में परिवर्तन क्षमता रहती है।
5. संरचना गत विशेषता का होना प्रत्येक मानव समुदाय की भाषा में उसकी विशिष्ट संरचना होती है, जिसके अनुसार ही विचार विनिमय में सरलता आती है।
6. मूर्त–अमूर्त की स्थिति मानव–भाषा में मूर्त–अमूर्त सभी प्रकार के अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होती है अर्थात भाषा स्थूल वस्तुओं का ही नहीं अपितु अमूर्त भावों–विचारों से संबंधित अर्थ को भी व्यक्त करती हैं।
7. सांस्कृतिक संक्रमण मानव–भाषा पैतृक परंपरा से नहीं अपितु शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सवंमित होती है। इसे अनुकरण की क्रिया सम्पन्न करती है।

भाषा व्यवस्था और भाषा व्यवहार

प्रसिद्ध भाषाविज्ञानी आर.एच. राविन्स के अनुसार–भाषा व्यवस्था किसी भाषा के बोलने वालों के मस्तिष्क में भाषिक क्षमता के रूप में विद्यमान रहती है। अतः इसकी सत्ता मानसिक होती है। इसे ही भाषा व्यवस्था कहा जाता है। जब कोई व्यक्ति उस भाषा को बोलता है तो यह उसी मस्तिष्क

में व्यवस्थित भाषा का व्यावहारिक रूप है। भाषा की यह व्यावहारिक सत्ता भौतिक होती है। जो उच्चारण या लेखन में प्रकट होती है। इस प्रकार किसी के अनुकरण पर एक ही वाक्य बोल लेना यह नहीं सिद्ध करता कि वह व्यक्ति उस भाषा को जानता है। बोलना भाषा व्यवहार है, जो व्यक्ति से जुड़ा है लेकिन भाषा को जानना अलग बात है जो भाषा व्यवस्था का आधार है।

वस्तुतः भाषा के दो पक्ष माने गये हैं–

1. मानसिक और 2. भौतिक। मानसिक पक्ष उसका अमूर्त रूप है और भौतिक मूर्त रूप। प्रत्येक वक्ता के मन में भाव और विचार अमूर्त रूप में विद्यमान रहते हैं। जब वक्ता उन्हें प्रकट करना चाहता है तो वागवयवों की सहायता लेता है और भाषा मूर्त रूप ग्रहण कर लेती है। उधर श्रोता के मन में ही वह भाषा अमूर्त रूप में विद्यमान रहती है। इसलिए जब श्रोता द्वारा उच्चरित भाषा श्रवणेन्द्रिय के माध्यम से उसके मन तक पहुँचती है तो वह वक्ता के अभिप्राय को अविकल रूप से ग्रहण कर लेता है।

इस प्रक्रिया में वक्ता और श्रोता के बीच सामंजस्य होना जरूरी है। यदि श्रोता वक्ता की भाषा व्यवस्था से परिचित नहीं है तो अर्थ प्राप्ति नहीं होगी। यह ध्यान देने योग्य है कि भाषा व्यवस्था भी सबमें समान नहीं होती क्योंकि किसी भाषा भाषी वर्ग में सबके मस्तिष्क में समान भाषा व्यवस्था नहीं होती। अतः यह स्पष्ट है कि इस व्यवस्था का संबंध समाज से है। उस विशेष भाषा– समूह के मस्तिष्क में भाषा की यह व्यवस्था विद्यमान रहती है। वह अपने भावों और विचारों को मूर्त रूप देने के लिए, उसी व्यवस्था के अंतर्गत अपनी भाषा का व्यवहार करता है। यदि भाषा की यह व्यवस्था न होती तो वह उसे व्यवहार में कैसे लाता और व्यवहृत होने पर या मूर्त रूप में आने पर उस भाषा को श्रोता इसलिए ग्रहण करता है क्योंकि उसके मस्तिष्क में भी वह भाषा व्यवस्था विद्यमान है। यदि श्रोता उस भाषा व्यवस्था से नहीं जुड़ा है। तो सुनकर भी कुछ समझ नहीं सकता। यह अवश्य है कि कुछ वाक्यों का उच्चारण कर सकता है। भाषा व्यवस्था के महत्त्व को जानने के बाद यह जानना आवश्यक है कि हर व्यवस्था की अपनी एक संरचना होती है।

भाषिक संरचना को जानने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि भाषा किसकी व्यवस्था है अर्थात् भाषा की संरचना किन उपादानों से होती है। सामान्यतः भाषा के अभिव्यक्त रूप को देखकर हम कह सकते हैं कि भाषा मूलतः स्वनों की व्यवस्था है, क्योंकि भाषा के वाक् रूप में स्वन ही उच्चरित होते हैं। स्वनों की अनुभूति ज्ञानेन्द्रियों से होती है चाहे वह वागेन्द्रिय हो या श्रवणेन्द्रिय। इन्द्रियों से प्राप्तज्ञान को स्थूल कहा जाता है। अतः स्वनों को स्थूल कहा जाता है किन्तु स्वनों से जो अर्थ उद्भूत होता है उसका बोध इन्द्रियाँ नहीं कर सकतीं।

वह बौद्धिक अनुभूति का विषय है। अतः अर्थ को हम सूक्ष्म कहेंगे। इस तरह भाषा के दो पक्ष हुए। स्थूल या भौतिक पक्ष स्वनव्यवस्था और सूक्ष्म या बौद्धिक पक्ष अर्थ व्यवस्था। इस प्रकार भाषा अनुभूति और अभिव्यक्ति की मिश्रित व्यवस्था है।

भाषा और प्रतीक व्यवस्था

प्रतीक विशेष प्रकार के संकेत हैं। कुछ घटनाएं या पदार्थ ऐसे होते हैं जिनके द्वारा अन्य घटनाओं तथा पदार्थों का निर्देशन होता है। अर्थात् एक विशिष्ट घटना या वस्तु को देखकर हमारा ध्यान किसी अन्य घटना या वस्तु की ओर आकृष्ट हो जाता है। इनका सम्बन्ध स्वाभाविक तथा कारणात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। इनका सम्बन्ध मानव निर्मित हो सकता है या कोई सम्बन्ध रूढ़ होकर प्रतीकात्मक बन जाता है। कम्पन ज्वर का संकेत है जो स्वाभाविक सम्बन्ध पर आधारित है। मानचित्र पर रेल, सड़क, स्कूल आदि प्रतीकों के द्वारा ही प्रदर्शित किए जाते हैं। इसी तरह चौराहे पर लगी हुई लाल, हरी बत्तियां रुकने तथा जाने की संकेतक होती हैं। भाषाओं को 'प्रतीक व्यवस्थाओं की समावेशक' माना गया है क्योंकि वे इस तरह के रूढ़ संकेतों तथा प्रतीकों में उल्लेखनीय अन्तर होता है। भाषा की प्रतीक व्यवस्था विशुद्ध या यादृच्छिक रूढ़ि पर आधारित होती है। जबकि मानचित्र पर अंकित संकेत रूढ़ शैली के द्वारा उन वस्तुओं का बोध कराते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि संकेत तथा संकेतक वस्तु में परस्पर सुनिश्चित सम्बन्ध होता है। भाषा में प्रयुक्त शब्द–प्रतीकों का सम्बन्ध उनके द्वारा संकेतिक वस्तु–विशेष के साथ नहीं होता है। प्रायः सभी भाषाओं में पाये जाने वाले अनुरणात्मक या ध्वनि अनुकरणात्मक शब्दों का सम्बन्ध वस्तु विशेष के साथ कुछ निश्चित सीमा

NOTES

तक पाया जाता है जैसे बिल्ली की बोली के लिए प्रयुक्त शब्द प्रतीक म्याऊँ, चिड़िया की बोली के लिए चीं चीं आदि। आर.एच. राविन्स ने कहा है कि 'अम्प से अन्त होने वाले अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्द जैसे थम्प, क्लम्प, स्टम्प, डम्प आदि गुरुता, स्थूलता एवं मन्दता के साथ साहचर्य प्रकट करते हैं।' यह तथ्य सुविदित है कि प्रत्येक भाषा में इस तरह के अनुरणात्मक शब्दों की संख्या अत्यन्त सीमित होती है। इसमें एक दूसरी समस्या यह भी है कि विश्व की सभी भाषाओं में एक ही जन्तु की बोली के लिए समान प्रतीक शब्द प्रयुक्त नहीं होता है। अंग्रेजी में कुत्ते की ध्वनि को बाऊ–बाऊ तथा हिन्दी में भों–भों वाले कुछ भाषा वैज्ञानिकों के प्रयास के बावजूद यह तथ्य सिद्ध नहीं हो जाता है कि भाषा की शब्दावली का अधिकांश भाग अपने साहचर्यों में विशुद्ध रूप से यादृच्छिक नहीं होता है। यदि ऐसा न होता तो विश्व की अधिकांश भाषाएं बहुत कुछ समान होतीं।

भाषा की प्रतीक व्यवस्था की अतिशय व्याप्ति आश्चर्य में डाल देने वाली हैं। भाषा अपनी प्रतीक व्यवस्था में संसार की सभी वस्तुओं, घटनाओं, अनुभूतियों तथा विचारों को बांध लेने की क्षमता रखती है। अपने वक्ताओं की आवश्यकतानुसार भाषा अनन्त रूपों में परिवर्तित और परिवर्द्धित होती रहती है। इसीलिए भाषा से इतर प्रतीक और कुछ जीवों के द्वारा प्रयुक्त संप्रेषणात्मक साधन भाषा की बराबरी नहीं कर पाते।

भाषा के प्रतीक ध्वन्यात्मक होते हैं। ध्वनियों के पारस्परिक संयोजन का प्रत्येक भाषा में एक निश्चित क्रम होता है। इसी तरह भाषा के विभिन्न अंगों (ध्वनि, शब्द, वाक्य और अर्थ) की निश्चित क्रियाशीलता होती है अर्थात् सभी अंग एक व्यवस्था के तहत कार्यरत होते हैं।

भाषा व्यवहार

भाषा की परिभाषा पर गंभीरता विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि भाषा की उपयोगिता व्यक्ति को समाज से जोड़ता है। वह समाज चाहे दो व्यक्तियों का हो या लाखों करोड़ों का। इस प्रकार भाषा साामाजिक वस्तु है। समाज से ही भाषा सीखी जाती है और अपना अभिप्राय भी सामाजिक व्यवहार के लिए व्यक्त किया जाता है। किंतु कई स्थितियों में भाषा का व्यवहार वैयक्तिक सीमा में भी होता है। एकान्त में गाना गाते हुए, अथवा सुनसान जगह में कुछ बडबड़ाते हुए भी व्यक्ति भाषा का ही उपयोग करता है।

इस प्रकार भाषिक व्यवहार तीन स्तरों पर देखा जा सकता है –

1. **व्यक्ति स्वयं या आत्मालाप** –

   भाषा का व्यवहार व्यक्ति स्वयं के लिये कम करता है। किन्तु अकेले में कुछ कहते हुए, गाना गुनगुनाते हुए, विरोधियों के प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुए भाषा का उपयोग करता है। इस प्रकार भाषा का उपयोग व्यक्ति के स्तर भी होता है। इसे ही हम आत्मालाप की संज्ञा दे सकते हैं।

2. **व्यक्ति व्यक्ति या वार्तालाप** –

   यही भाषिक व्यवहार का सबसे व्यापक और महत्त्वपूर्ण पहलू है। इसमें वक्ता और श्रोता दोनों पक्ष विद्यमान रहते हैं। अधिकतर प्रसंगों में एक कथन का वक्ता अगले कथन का श्रोता बन जहाता है और श्रोता वक्ता बनकर अपनी बात कहता है। यह क्रम चलता रहता है। कई बार तीन, चार या अधिक व्यक्ति बातचीत करते हैं तो कई वक्ता और श्रोता यथाक्रम अपनी अपनी भूमिका निबाहते हैं। दो प्रेमियों का संभाषण, मित्रों की गप्प गोष्ठी, सास बहू की नोक झोंक, किसी समस्या पर परिवार के विभिन्न व्यक्तियों का विचार विमर्श, ग्राहक और विक्रेता के संवाद, न्यायाधीश और वकीलों की दलीलें, स्वामी और सेवक की बातचीत आदि संभाषण की असंख्य स्थितियाँ इस वर्ग में आती हैं, जिनके आज्ञा, निर्देश, प्रश्न, उत्तर, भावाभिव्यक्ति आदि असंख्य रूप हो सकते हैं।

3. **व्यक्ति समाज या संभाषण** –

   यह भाषिक व्यवहार का वह पहलू है, जिसमें वक्ता अपेक्षाकृत बड़े समुदाय से बातें करता है। इस स्थिति में वक्ता, वक्ता ही बना रहता है और श्रोता निष्क्रिय श्रोता। कुछ अपवादों को छोड़कर विश्वविद्यालय की कक्षाएँ, राजनैतिक नेताओं की जनसभाएँ, संतों और महात्माओं का प्रवचन,

आकाशवाणी और दूरदर्शन की वार्ताएँ, समाचार बुलेटिन, रेलवे स्टेशनों और हवाई अड्डों की घोषणाएँ एकपक्षीय भाषण के विविध रूप हैं।

वस्तुतः भाषा व्यवहार का यह पक्ष एक भाषी समाज से घनिष्ठ रूप में संबद्ध होता है, तथा जीवन के विविध पक्षों के उजागर करने में भाषा का वृहत्तर उपयोग होता है।

सामाजिक दृष्टि से भाषा के पाँच प्रमुख उपयोग हैं–

1. विचार–सम्प्रेषण– सामाजिक दृष्टि से भाषा का उल्लेखनीय व्यवहार विचारों और भावों के संप्रेषण में होता है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन में भाषा का उपयोग विचारों के आदान–प्रदान में ही करता है।
2. संसूचन भाषा का दूसरा उपयोग आवश्यक सूचना देना है। वस्तुतः यह विचार–संप्रेषण का ही एक रूप है तथापि इसमें व्यक्ति से ज्यादा वर्ग या समाज को विविध ज्ञान, स्थितियों, नियमों की जानकारी देने का उद्देश्य निहित होता है।
3. उद्‌बोधन यह भी भाषा का सामाजिक पक्ष है। जिसमें चेतना उत्पन्न करने, जागरुकता लाने आदि नैतिक और कर्तव्य जनित कार्यों की ओर उन्मुख करने का भाव रहता है।
4. रसास्वादन साहित्य, संगीत, काव्यशास्त्रीय रसास्वादन, आदि ने लिए भाषा का उपयोग होता है। वस्तुतः यह कार्य आत्मिक जगत को रससिक्त करता है।
5. दर्शन एवं चिंतन ऐहिक जगत की वैज्ञानिक संरचना से परिचित कराने तथा सृष्टि की रचना एवं रचयिता के संबंध में गंभीर चिंतन कर उसे व्यक्त करने में भी भाषा का व्यवहार होता है।

भाषा संरचना

भाषा के जिन दो पक्षों से उसको स्वरूप मिलता है वे हैं बोध और अभिव्यंजना अर्थात् अनुभूति और अभिव्यक्ति। इन दोनों का संबंध भाषा व्यवस्था से है, तथा भाषा व्यवस्था का आधार है उसकी संरचना। अतः अनुभूति और अभिव्यक्ति की मिश्रित संरचना भाषा कहलाती है। अभिव्यक्ति का तात्पर्य केवल रचनात्मकता से है, और अनुभूति का रचनों के द्वारा प्रकट आशय से है। अनुभूति अर्थ की होती है और इस अर्थ की अभिव्यक्ति कराने वाले तत्त्व भौतिक होते हैं। अतः अभिव्यक्त तत्त्व वे हैं जो भाषा के भौतिक उपादान हैं। इसमें स्वन, स्वनिम, रूप, व्याकरण और शब्द आते हैं।

द्रव्य और आकृति–

आधुनिक भाषाविज्ञान के अनुसार, स्वन, रूप, वाक्य और प्रोक्ति की संरचना का स्तर पृथक होता है और प्रोक्ति से ही अर्थ संरचना होती है। इस प्रकार हम देखें तो प्रतीत होता है कि स्वन और प्रोक्ति तक की संरचना में स्वन रूप वाक्य प्रोक्ति का क्रम बनता है। इसमें रूप, वाक्य और प्रोक्ति की व्यवस्था व्याकरण से जुड़ी है। अतः भाषा संरचना के भौतिक पक्ष में स्वन और व्याकरण आते हैं। संरचनात्मक भाषा वैज्ञानिकों ने इसे नए रूप में व्याख्यायित किया। उसका आधार अर्थ तंत्र है। अभी तक शब्द और अर्थ का संबंध रूढ़िगत माना जाता था लेकिन परवर्ती भाषा वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया कि एक भाषा से दूसरी भाषा के शब्दों में अर्थ साम्य नहीं मिलता।

इस दृष्टि से सस्यूर का अनुसंधान महत्त्वपूर्ण है। सस्यूर के अनुसार अर्थ और ध्वनि दोनों का अस्तित्व मानसिक है। वस्तु और ध्वनि दोनों की सत्ता भौतिक है। उदाहरण के लिए गाय की सत्ता तथा उच्चारित या लिखित ग् + आ+य+अ की सत्ता भौतिक है पर गाय कहने से जो अर्थ संकेत बनता है वह मानसिक है इसी प्रकार उच्चरित होने से पूर्व ये ध्वनियाँ भी मानसिक रूप से विद्यमान रहती हैं। अर्थ और ध्वनि के मानसिक बिम्ब में भी संबंध रहता है। अतः भौतिक सत्ता अर्थात् वस्तु और ध्वनि तथा इनके मानसिक बिम्ब दो तत्त्व हुए। सस्यूर ने भौतिक वस्तु और ध्वनि को पदार्थ या द्रव्य कहा है और मानसिक बिम्ब को रूप या आकृति कहा है। इसी के आधार पर सस्यूर ने प्रतिपादित किया कि भाषा पदार्थ नहीं रूप है। विभिन्न भाषाओं के अर्थ तंत्र में भेद के लिए भाषा वैज्ञानिकों ने वस्तु और रूप के बीच विभेद का आश्रय लिया है। अर्थात् प्रत्येक भाषा में वस्तु और रूप अलग

होते हैं। अतः जब हम दूसरी भाषा का अध्ययन करते हैं तो हमें वस्तु के लिए वही रूप नहीं मिलता जो पहली भाषा में है। इसलिए एक भाषा के शब्दों को दूसरी भाषा के शब्दों की यथावत् अर्थ साम्य में नहीं लाया जा सकता। इसकी सिद्धि प्रोक्ति से होती है। अतः वाक्य संरचना भाषा का एक स्तर है अंतिम स्तर नहीं।

प्रोक्ति –

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों का मत है कि भाषा किसी मंतव्य की अभिव्यक्ति है। मंतव्य कभी एक वाक्य से नहीं प्रकट होता। उसमें एकाधिक वाक्यों का प्रयोग होता है। संपूर्ण मंतव्य को प्रकट करने वाले वाक्य खण्ड को प्रोक्ति कहते हैं। भाषा की पूरी व्यवस्था प्रोक्ति है।

उपर्युक्त स्तर भाषा संरचना के महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं। इसके अतिरिक्त लिपिबद्ध संरचना का अलग स्तर होता है। हर भाषा की लेखनीय संरचना में भी अंतर होता है। अतः लिपि को भी भाषा संरचना का महत्त्वपूर्ण तत्त्व माना जाता है। इस प्रकार स्वन, शब्द, रूप, अर्थ, स्वनिम, वाक्य, प्रोक्ति तथा लेखन भाषा संरचना के अंतर्गत आते हैं।

भाषिक प्रकार्य

भाषा का प्रकार्यात्मक अध्ययन प्राग स्कूल की देन है। अतः प्राग सम्प्रदाय को प्रकार्यवादी सम्प्रदाय भी कहा जाता है। प्राग सम्प्रदाय में इस दिशा में कार्य करने वाले भाषा वैज्ञानिक रोमन याकोब्सन और मार्तिने थे। अतः उन्हें प्रकार्यवादी भी कहा जाता है।

भाषिक प्रकार्य में भाषा का विश्लेषण सामान्य संरचना के आधार पर नहीं किया जाता। प्रकार्यवादी भाषा के विभिन्न प्रकार्यों के आधार पर भाषा का विश्लेषण करते हैं।

सामान्यतः भाषा के अंतर्गत आने वाली इकाइयों के अपने प्रकार्य होते हैं, जिनका अध्ययन भाषा विज्ञान के अंतर्गत किया जाता है किन्तु प्राग सम्प्रदाय ने भाषा के अपने प्रकार्यों को अध्ययन का विषय बनाया है। रोमन याकोब्सन के अनुसार भाषा को तीन दृष्टियों से देखना चाहिए

1. वक्ता 2. श्रोता 3. संदर्भ।

वक्ता की दृष्टि से भाषा अभिव्यक्ति प्रकार्य करती है, श्रोता की दृष्टि से प्रभाविक प्रकार्य करती है और संदर्भ की दृष्टि से साम्प्रेषणिक प्रकार्य करती है। इसके अतिरिक्त संपर्क, कूट और संदेश ये तीन संदर्भ भी भाषा बनाती है। अतः याकोब्सन ने भाषा के छः प्रकार्य माने हैं।

1. आभिव्यक्तिक प्रकार्य
2. इच्छापरक
3. अभिधापरक
4. संपर्क द्योतक
5. आधिभाषिक
6. काव्यात्मक

प्रकार्यवादियों के अनुसार भाषा की संरचना प्रकार्य के अनुसार बदल जाती है। इस प्रकार एक ही भाषा प्रकार्यानुसार भिन्न–भिन्न रूपों में प्रस्तुत होती है।

भाषा के इन समस्त रूपों को चार भागों में सम्मिलित किया जाता है। याकोब्सन ने वक्ता, श्रोता और संदर्भ तीन तत्त्वों के आधार पर प्रमुख तीन प्रकार बनाये हैं। उपर्युक्त छः रूप भाषा के आभिव्यक्तिक संदर्भ से जुड़े हैं। अतः हम इसे निम्न रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं–

भाषा को जब हम द्रव्य मानते हैं तो उसकी अनुकारिता अर्थ से अधिक संगत होती है क्योंकि ध्वनियों का भौतिक रूप (उच्चरित रूप) जिस अर्थ को प्रस्तुत करता है वह यादृच्छिक है। दूसरे ध्वनि और अर्थ का संबंध एकस्तरीय होता है। सस्यूर इसे संकेत कहते हैं। उनका मानना है कि अभिव्यक्त शब्द जिसका संकेत करता है, वह भौतिक वस्तु नहीं है वरन् उसका मानसिक बिम्ब है। इस तरह ध्वनि परक अभिव्यक्ति संकेतक है और उससे जो संकेतित है, वह है अर्थ। दोनों के बीच यादृच्छिक संबंध है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भाषा संरचना में अनुभूति और अभिव्यक्ति दो पक्ष होते हैं। अनुभूति का संबंध अर्थ संरचना से है। अभिव्यक्ति की संरचना स्वन एवं व्याकरण से सम्पृक्त है। स्वन स्वतः

अर्थ संरचना नहीं कर सकते। अतः अभिव्यक्ति की संरचना में निम्न पक्ष होते हैं–

1. स्वनात्मक संरचना। 2. व्याकरणात्मक संरचना।

स्वनात्मक संरचना दो रूपों में होती है 1. स्वन संरचना 2. स्वनिमिक संरचना। इसी प्रकार व्याकरणात्मक संरचना के दो पक्ष होते हैं– 1. रूपात्मक 2. वाक्यात्मक। स्वनिमिक और रूपतामक संरचना में अर्थ सृष्टि का कार्य रूप स्वनिमिक संरचना से होता है।

आधुनिक भाषा वैज्ञानिकों ने स्वन एवं अर्थ संरचना को गौण और स्वनिमिक और वाक्यात्मक संरचना को प्रधान माना है। स्वन और अर्थ को गौंण मानने का तर्क यह है कि भाषा के इन दोनों तत्त्वों को संबंध विज्ञान की अन्य शाखाओं से भी है जबकि अर्थ का संबंध दर्शन से है। इसके विपरीत स्वनिमिक और व्याकरणिक संरचना का अध्ययन केवल भाषा विज्ञान के अंतर्गत होता है।

भाषिक संरचना के स्तर

भाषा संरचना के स्वरूप को समझने के लिए संरचना के विविध स्तरों का विवेचन आवश्यक है। सामान्यतः भाषा संरचना के चार स्तर हैं– स्वन, व्याकरण, प्रोक्ति और अर्थ। स्वन के अंतर्गत स्वन और स्वनिमिक, व्याकरण के अंतर्गत रूप और वाक्य, को लिया जा सकता है। संक्षेप में भाषा संरचना के प्रमुख स्तर इस प्रकार है

1. स्वन स्वनों की व्यवस्था ही भाषा है। स्वन स्वयं अर्थ नहीं देते लेकिन स्वनों के योग से ही शब्द, पद, वाक्य, और प्रोक्ति की स्थिति है। अतः भाषा में स्वन और स्वनिमों के स्तर पर अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।
2. शब्द को भाषा की महत्त्वपूर्ण कड़ी माना जाता है। शब्द अर्थवान होते हैं और पद तथा वाक्य में अर्थ देने वाले होते हैं। शब्दों में प्रत्ययदि के योग से रूप बनते हैं।
3. रूप वाक्य रूपों से बनता है। रूप को ही पद कहते हैं। रूप में शब्द और धातु आते हैं जो अर्थ तत्त्व कहे जाते हैं तथा प्रत्यय और कारक जुड़कर उसे पद बनाते हैं। इन्हें संबंध तत्त्व कहते हैं। रूप व्याकरणिक संरचना के मुख्य तत्त्व हैं।
4. वाक्य भाषा में अर्थवान इकाई वाक्य को माना जाता रहा है। वाक्य अनेक प्रकार के होते हैं। संरचनात्मक भाषाविज्ञान में वाक्य का विशेष महत्त्व है। आधुनिक भाषाविज्ञान में वाक्य को पूर्ण इकाई नहीं माना जाता क्योंकि अर्थ संरचना में वाक्य की अपेक्षा पूरी अनुभूति होती है।
5. साम्प्रेषणिक प्रकार्य जब वक्ता द्वारा श्रोता को कोई सूचना सम्प्रेषित की जाती है और सीधे विचार विनिमय होता है तो भाषा संरचना का स्तर अलग होता है जिसे हम साम्प्रेषणिक प्रकार्य कहते हैं। सामान्य वार्तालाप में इसी प्रकार्य का प्रयोग होता है।
6. आभिव्यक्तिक प्रकार्य भाषा के द्वारा वक्ता अपने आपको अभिव्यक्त करता है। अतः हर व्यक्ति की भाषा कुछ न कुछ बदल जाती है जिसे हम उसकी शैली कह सकते हैं। भाषा के सभी स्तरों पर यह परिवर्तन दिखलायी पड़ता है। यहाँ तक कि साहित्य सृजन में भी कथा भाषा और काव्य भाषा का अंतर साम्य देखा जा सकता है। इस प्रकार भाषा की संरचना एक स्तर पर नहीं होती। आभिव्यक्तिक प्रकार्यानुसार भाषा संरचना में परिवर्तन आता है।
7. प्राभाविक प्रकार्य भाषा का प्रयोग जब इस रूप में होता है जिसमें सम्प्रेषण और आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा श्रोता को प्रभावित करना ही मुख्य उद्देश्य हो तो उसे भाषा का प्राभाविक प्रकार्य कहा जाता है। भाषणों की भाषा मुख्यतः प्राभाविक होती हैं, जिसका उद्देश्य श्रोता को प्रभावित करना है। अतः भाषणों की भाषा संरचना और उसका अनुमान अलग होता है। इसकी संरचना, शब्दावली भी भिन्न होती है।
8. सामष्टिक प्रकार्य भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार भाषा के उपर्युक्त तीन प्रकार अलग अलग अवसरों पर प्रयुक्त होते हैं। इन प्रकार्यों से समन्वित भाषा का अस्तित्व अलग होता है, जिसे सामाजिक प्रकार्य कहा जा सकता है। समन्वित भाषा संरचना का अपना प्रकार्य होता है। यह उसी प्रकार है जैसे अलग– अलग वस्तुएँ अपना स्वतंत्र महत्त्व रखती हैं लेकिन उन्हें एक साथ

स्व-प्रगति की जाँच करें

प्रस्तुत किया जाय तो किसी अन्य वस्तु का बोध कराती हैं। उदाहरण के लिए इडली, डोसा स्वयं में अलग खाद्य हैं पर समष्टि रूप में दक्षिण भारतीय व्यंजन के रूप में माने जायेंगे। इसी प्रकार अलग–अलग प्रकार्य के रूप में प्रस्तुत होने पर भी भाषा की अपनी निजता होती है। सामान्य क्रम में हम रेडियो या आकाशवाणी कुछ कहें लेकिन सामष्टिक रूप में हिंदी का प्रतिनिधित्व करने वाला शब्द आकाशवाणी है। इस तरह भाषा का जो निजी अस्तित्व है और अभिव्यक्ति से पृथक है उसे सामष्टिक प्रकार्य कहा जा सकता है।

इसी प्रकार्यात्मक अध्ययन के आधार पर प्राग स्कूल में भाषा के मानक रूप का अध्ययन हुआ। रोमन याकोव्सन ने भाषा के प्रकार्यों का निर्धारण करके भाषा के अभिलक्षणों और ध्वनियों का अध्ययन किया है, जो उनकी महत्त्वपूर्ण देन है।

सार–संक्षेप

भाषा की परिभाषा 'भाषा मानव मुख निः सृत वाक् प्रतीकों की वह व्यवस्था है, जिसके माध्यम से कोई व्यक्ति अथवा कोई भाषा समुदाय आपस में विचारों का आदान प्रदान करते हुए क्रियाशील होता है।

भाषा की विशेषताएँ या उसके अभिलक्षण के विषय में कहा जा सकता है कि भाषा (1) सामाजिक वस्तु है (2) भाषा वैचिक या आनुवांशिक संपत्ति नहीं है। (3) भाषा अर्जित वस्तु है। (4) भाषा परंपरागत वस्तु है (5) भाषानित्य परिवर्तनशील है (6) भाषा व्याकरण द्वारा नियंत्रित होती है। (7) प्रत्येक भाषा की भौगोलिक एवं ऐतिहासिक सीमा होती है। (8) प्रत्येक भाषा का अपना स्वतंत्र ढाँचा होता है। (9) भाषा कठिनता से सरलता तथा संयोगावस्था से अयोगावस्था की ओर जाती है। तथा (10) भाषा का कोई अंतिम रूप नहीं होता।

जहाँ तक भाषा व्यवस्था का प्रश्न है, वह मूलतः स्वनों की व्यवस्था है। वस्तुतः भाषा के दो पक्ष हैं– स्थूल या भौतिक पक्ष जिसे हम स्वन व्यवस्था के रूप जानते है तथा दूसरा है सूक्ष्म या बौद्धिक पक्ष , जिसके अंतर्गत अर्थ व्यवस्था निहित है। स्पष्ट है कि भाषिक संरचना का आधार भी इन्हीं व्यवस्थाओं के उपादानों पर खड़ा है। जहाँ तक भाषा व्यवहार का प्रश्न है वह तीन स्तरों पर देखा जा सकता है वे हैं (1) व्यक्ति स्वयं (2) व्यक्ति व्यक्ति (3) व्यक्ति तथा समाज भाषा प्रकार्य के अंतर्गत इसे तीन दृष्टियों से देखना चाहिए (1) वक्ता (2) श्रोता (3) संदर्भ। वक्ता की दृष्टि से भाषा अभिव्यक्ति प्रकार्य करती है , श्रोता की दृष्टि से प्रभाविक प्रकार्य तथा संदर्भ की दृष्टि से सांम्प्रेणिक प्रकार्य करती है।

स्व–प्रगति की जाँच के उत्तर

1. भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से निष्पन्न हुआ है, जिसका कोशीय अर्थ है कहना या प्रकट करना। अतः भाषा को मनुष्य के भावों या विचारों को प्रकट करने का साधन कहा जा सकता है। मनुष्य अपने भावों या विचारों के आदान प्रदान के लिए ज्ञानेन्द्रियों को माध यम बनाता है। ऐसे सभी माध्यमों को भाषा के अंतर्गत समाहित नहीं किया जा सकता। भाषा विज्ञान के अंतर्गत 'भाषा' के जिस रूप का विश्लेषण किया जाता है वह उस व्यवस्था का अध्ययन है, जिसके अंतर्गत मनुष्य ध्वनि प्रतीकों के माध्यम से अपने भावों या विचारों का आदान प्रदान करता है। उस व्यवस्था को पारिभाषित करना यद्यपि जटिल है किन्तु प्राचीनकाल से विद्वानों ने भाषा को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

   प्राचीनकाल में महर्षि पंतजलि ने लिखा है 'व्यक्तायां वाचि वर्णा येषां तु इमे व्यक्त वाचः। पतंजलि के अनुसार जो वाणी वर्णों में व्यक्त होती है , उसे भाषा कहते हैं। कालान्तर में पाश्चात्य एवं भारतीय भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा के इस 'व्यक्त वाच' को विस्तार से विश्लेषित किया है।

2. प्रत्येक भाषा की स्थान और काल की दृष्टिसे सुनिश्चित सीमाएँ होती हैं। जैसे पंजाबी की सीमाएँ, पंजाब, बंगला की बंगाल, मराठी की महाराष्ट्र तथा गुजराती की गुजरात प्रदेश की राजनैतिक सीमाओं तक व्याप्त हैं। हमारे देश में भाषावार प्रांत रचना हुई है। अतः भाषाओं

की सीमाओं को लेकर कोई संभ्रम की स्थिति नहीं है। परंतु यदि ऐसा न होता तो भी भाषाओं की सीमाएँ स्वतः निर्धारित होती। योरोप में तो अधिकतर भाषाएँ संपूर्ण देश में प्रयुक्त होती हैं।

काल की दृष्टि से भी भाषाओं की व्यापकता सुनिश्चित होती है। उदाहरण के लिए आर्य भाषाओं के विकास क्रम पर दृष्टि डालें तो हम पाते हैं कि मध्यकालीन भाषाओं का समय 500 ई.पू. से लेकर 1000 ई. तक माना गया है। इस 1500 वर्ष के कालखण्ड में भी 500 ई. पू. से 0 ई. तक का काल पालि का. 0 ई. से 500 ई. तक का प्राकृतों का तथा 500 ई. से 1000 ई. तक का समय अपभ्रंशों का माना जाता है।

यहाँ यह बात स्पष्ट करना भी जरूरी है कि भाषा की सीमाएँ राजनैतिक सीमाओं की तरह सुस्पष्ट नहीं होती। दो भाषाओं के बीच सैकड़ों वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र संधि क्षेत्र होता है, जहाँ दोनों भाषाएँ बोली जाती हैं। जैसे जैसे हम एक भाषा के केन्द्र की ओर बढ़ते हैं , पहली भाषा का प्रभाव कम होता जाता है। महाराष्ट्र और गुजरात की सीमा पर स्थित नंदुरबार और सूरत जिलों का काफी विस्तृत भाग मराठी और गुजराती का संधि क्षेत्र है।

3. भाषा नित्य परिवर्तनशील होती है। अतः उसका कोई अंतिम रूप होना संभव ही नहीं। मराठी में बीसवीं शताब्दी में ही इतने परिवर्तन हुए कि पुरानी पीढ़ी के लोग इसे भाषिक अराजकता तक कहने लगे। वहाँ संस्कृत के तत्सम शब्दों को उच्चारण के अनुसार बदल लिया गया। रीति, नीति, कवि, मुनि, मराठी में रीती, नीती, कवी और मुनी हो गये और मानक मराठी में इन्हें शुद्ध मान लिया गया। लेखन में अनुस्वार का सर्वत्र लोप हो गया। अमरीकी इंगलिश में भी वर्तनी के क्षेत्र में ऐसी ही स्वच्छदंता आयी। Kwality, Program आदि वर्तनियाँ चल पड़ी। स्पष्ट है कि यह बदलाव एक ही पीढ़ी के जीवनकाल में हुआ। कल और परिवर्तन होंगे, होते रहेंगे।

   अपवाद रूप में संस्कृत ही एकमात्र ऐसी भाषा है, जिसे पाणिनि के व्याकरण ने इतना स्थिर कर दिया है कि शताब्दियों की यात्रा में भी उसमें कोई बहुत उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं हुआ। कुछ भाषावैज्ञानिकों का मत है कि संस्कृत एक मृत भाषा है। अतः वह एक रूढ़िबद्ध ढाँचे में बँधकर रह गयी है। परंतु ऐसा मानना युक्तिसंगत नहीं है। संस्कृत आज भी जीवित है। वह हमारे जन जीवन में बहुत गहरे तक पैठ चुकीहै।

4. मानवीय भाषा में कतिपय ऐसी विशेषताएं होती हैं, जो अन्य प्राणियों की भाषा में नहीं मिलती। पाश्चात्य भाषा शास्त्री 'हॉकेट' ने सात विशेषताओं का उल्लेख किया है। वे हैं–
   1. द्वैतता अर्थात किसी भाषा में दो तत्व अवश्य होते हैं। पहला है सार्थक ध्वनि–अंश, जिसे स्वनिम नाम से जानते हैं तथा दूसरा है–सूपिम।
   2. उत्पादकता मुनष्य की भाषा में यह विशेषता होती है कि वह वक्ता तथा श्रोता के मध्य बोधगम्यता को उत्पन्न करती है।
   3. पादृच्छिकता भाषा के किसी तत्व और अर्थ में को चिरस्थायी संबंध नहीं होता। सभी भाषिक तत्वों के अर्थ प्रयोक्ता द्वारा स्वैच्छिक रखे होते हैं, जो वस्तुतः संकेतजन्य होते हैं।
   4. प्रेषण एवं ग्रहण में परस्पर परिवर्तनशीलता की क्षमता का होना– भाषा का उपयोग करने वाला कोई भी व्यक्ति अपने भाव या विचार को प्रेषित कर सकता है तथा ग्रहण कर सकता है। इस प्रकार कथन एवं श्रवण के द्वारा आदान–प्रदान की प्रक्रिया में परिवर्तन क्षमता रहती है।
   5. संरचना गत विशेषता का होना प्रत्येक मानव समुदाय की भाषा में उसकी विशिष्ट संरचना होती है, जिसके अनुसार ही विचार विनिमय में सरलता आती है।
   6. मूर्त–अमूर्त की स्थिति मानव–भाषा में मूर्त–अमूर्त सभी प्रकार के अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होती है अर्थात भाषा स्थूल वस्तुओं का ही नहीं अपितु अमूर्त भावों–विचारों से संबंधित अर्थ को भी व्यक्त करती हैं।

NOTES

7. सांस्कृतिक संक्रमण मानव–भाषा पैतृक परंपरा से नहीं अपितु शिक्षा के द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक सवंमित होती है। इसे अनुकरण की क्रिया सम्पन्न करती है।

5. प्रतीक विशेष प्रकार के संकेत हैं। कुछ घटनाएं या पदार्थ ऐसे होते हैं जिनके द्वारा अन्य घटनाओं तथा पदार्थों का निर्देशन होता है। अर्थात् एक विशिष्ट घटना या वस्तु को देखकर हमारा ध्यान किसी अन्य घटना या वस्तु की ओर आकृष्ट हो जाता है। इनका सम्बन्ध स्वाभाविक तथा कारणात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। इनका सम्बन्ध मानव निर्मित हो सकता है या कोई सम्बन्ध रूढ़ होकर प्रतीकात्मक बन जाता है। कम्पन ज्वर का संकेत है जो स्वाभाविक सम्बन्ध पर आधारित है। मानचित्र पर रेल, सड़क, स्कूल आदि प्रतीकों के द्वारा ही प्रदर्शित किए जाते हैं। इसी तरह चौराहे पर लगी हुई लाल, हरी बत्तियां रुकने तथा जाने की संकेतक होती हैं। भाषाओं को 'प्रतीक व्यवस्थाओं की समावेशक' माना गया है क्योंकि वे इस तरह के रूढ़ संकेतों तथा प्रतीकों में उल्लेखनीय अन्तर होता है। भाषा की प्रतीक व्यवस्था विशुद्ध या यादृच्छिक रूढ़ि पर आधारित होती है। जबकि मानचित्र पर अंकित संकेत रूढ़ शैली के द्वारा उन वस्तुओं का बोध कराते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि संकेत तथा संकेतक वस्तु में परस्पर सुनिश्चित सम्बन्ध होता है। भाषा में प्रयुक्त शब्द–प्रतीकों का सम्बन्ध उनके द्वारा संकेतिक वस्तु–विशेष के साथ नहीं होता है। प्रायः सभी भाषाओं में पाये जाने वाले अनुरणात्मक या ध्वनि अनुकरणात्मक शब्दों का सम्बन्ध वस्तु विशेष के साथ कुछ निश्चित सीमा तक पाया जाता है जैसे बिल्ली की बोली के लिए प्रयुक्त शब्द प्रतीक म्याऊँ, चिड़िया की बोली के लिए चीं चीं आदि। आर.एच. राविन्स ने कहा है कि 'अम्प से अन्त होने वाले अंग्रेजी भाषा के अनेक शब्द जैसे थम्प, क्लम्प, स्टम्प, डम्प आदि गुरुता, स्थूलता एवं मन्दता के साथ साहचर्य प्रकट करते हैं।'

अभ्यास–प्रश्न

1. भाषा की उपयुक्त परिभाषा देते हुए उसकी विवेचना कीजिए।
2. भाषा के अभिलक्षणों का वर्णन कीजिए।
3. भाषा–व्यवस्था से आप क्या समझते हैं! समझाकर लिखिए।
4. भाषा–व्यवहार पर एक निबंध लिखिए।
5. भाषा प्रकार्य पर अपने विचार प्रकट कीजिए।